Chapter-3

तृतीय अध्याय

संयोग, श्रृंगार संबंधी राजस्थान के लोकगीत

संयोग श्रृंगार के लोकगीतों का सामान्य विवेचन - राजस्थानी लोकगीतों का संयोग-श्रृंगार पूर्णत: रीतिकाल का श्रृंगार नहीं है वरन् वह खेत-खलिहानों, पनघट, ओर-छोर तक फैले मरुस्थल, व्रत-त्यौहारों और उत्सवों का श्रृंगार है । यह खुले नीलाम्बर सा स्वच्छ, प्रकाश सा निर्मल जीवन का श्रृंगार है ।''नारी कभी बरगद और नींबूड़े के प्रतीकों द्वारा यौवनोन्माद भरी प्रेयसी के रूप में दिखाई पड़ती है, कभी पति के ''लाड़'' की अभिव्यक्ति करती हुई गर्विणी नायिका के रूप में प्रकट होती है और कभी छत्तीस प्रकार के व्यंजन बनाकर पति के पास बैठकर प्रेमपूर्वक भोजन कराती और पंखा झलती हुई आदर्श गृहिणी के रूप में दृष्टिगत होती है ।[१]

राजस्थान के इन लोकगीतों की सुवास में रूप-वर्णन, प्रेम-मिलन की आतुरता, पारस्परिक, आकर्षण, पति से वस्त्रों-गहनों की मांग, आत्म त्याग, अपने 'बादीला' से हठ, रूठना-मनाना, मधुर विनोद, पारस्परिक संलाप, प्रेमाधिक्य, अपने 'मारू' का अपने हिवड़े में वास, चाकरी पर न जाने की अकुलाती मनुहारें, प्रत्येक त्यौहार के उल्लासों में आत्मतल्लीनता आदि न जाने कितने भावों की लड़ियां गूंथती, महकती हैं । इन्हें जनकंठों ने काव्यशास्त्र के उदाहरणों के धागों में नहीं गूंथा है, वरन् नैसर्गिक पवित्र भावों की झिलमिलाती विभावरी की आकाशगंगा ने बटोरा है ।

इन लोकगीतों की आकाश-गंगा में रूप-सौन्दर्य का आकर्षण निराला है । नायक और नायिका के मिलन की स्थिति में प्रेम-भरे-अनेक रमणीय भाव-चित्रों का सृजन किया गया है ।

सौन्दर्य की अमोघ शक्ति चाहे आन्तरिक हो, चाहे बाह्य 'सत्यं शिवं - सुन्दरम्' की चेतना को अभिसिंचित करती रहती है । सम्पूर्ण जगत को एक भावात्मक सूत्र में आबद्ध करने वाले रूप सौन्दर्य की महत्ता महान है ।''एक निष्ठता से जीवन भर एक स्त्री-पुरुष में परस्पर आकर्षण

---

१. राजस्थानी लोक-गीत, भाग १, डा० स्वर्णलता अग्रवाल, राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर, पृ० १५५

बताये रखने के लिये प्रारम्भिक वैवाहिक जीवन में स्त्री के सौन्दर्य और पुरुष की पौरुष शक्ति का बड़ा महत्व है ।''[१] लोकगीतों में दोनों की सुन्दरता का वर्णन हुआ है । 'मूमल'[२] और 'मिरगानैणी'[३] स्त्री-सौन्दर्य के प्रतिनिधि गीत है । पुरुष का सौन्दर्य विवाह-गीतों में उल्लिखित है ।

राजस्थानी लोकगीतों में सौन्दर्य की अधिष्ठात्री 'मूमल' है । मूमल के रूपवर्णन से संबंधित गीत लोक में अधिक प्रचलित है । यह गीत जन-जन का कंठ हार बना हुआ है । अलौकिक सौन्दर्य की प्रतिमा नायिका मूमल का अंग-प्रत्यंग नव-नवीन सुन्दरतम उपमाओं के सरोवर में खिल-खिल उठा है । मार्मिक भाषा में नायिका के सौन्दर्य का हृदयग्राही आदर्श इस प्रकार खड़ा किया गया है -

'' काली रे काली काजलिय री रेखड़ी रे ।
हांजी रे, कालोड़ा कांठल में चमके बीजली
म्हारी बरसाले री मूमल, हालेनी रे आलो जेरे देस''[१]

काले कजरारे नयनों में काजल की पतली रेखा ऐसी शोभा दे रही है, मानो श्यामल पर्वतों की सुदूर श्रेणी में बिजली चमक उठी हो । वर्षाकाल में प्रेमियों के हृदयों में अमृत बरसाने वाली 'मूमल' प्रियतम के देश को चल । इस गीत की कोमल श्रृंगारी, मधुरतम धुन में मूमल का रूप सौन्दर्य निखरता जाता है । प्रिय मिलनोत्सुक रमणी, लम्बी केशराशि को 'मेट' से धोकर सूखने के लिये छिटका देती है । नारियल सा गठा हुआ सुन्दर शीश, वासुकि नाग जैसी केशराशि, खाडे की तीक्ष्ण धार सी नाक, रतनारी रसभरी आंखें, रेशम के तार की तरह पतले, कोमल, होठ, दाड़िम सी उज्ज्वल दंतपंक्ति, पीपल के पत्ते सा पेट, सांचे में ढला हृदय स्थल, देवालय के स्तंभ की समानता करती जंघायें, जंघा का निम्न भाग सपाट और पिंडली पतली । ऐसी जग-मीठी हरियाली की तरह प्रेमियों के हृदय को हारतकर देने वाली नाजुक, देश की आदर्श सुन्दरी मूमल को अपने अलबेले प्रियतम के देश चलने के लिये कहा जाता

---

१. परम्परा, जोधपुर, लोकगीत अंक पृ० १०३ ।
२,३. परिशिष्ट गीत संख्या १, १ (मूमल) ।

है । वस्तुत: इस लोकगीत की आत्मा में राजस्थानी नारी का स्थानीय उपमाओं से आवेष्टित सौन्दर्य सर्वथा अनूठा बन गया है ।

इसी तरह का एक अन्य गीत है `` मिरगानैणी `` जिसमें स्त्री-सौन्दर्य के उपमानों की कुछ मौलिक कल्पनायें है । ये परम्परायुक्त रूढ़ियों से अधिकांशत: मुक्त है । यहां स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के सौन्दर्य का मंजुलमेल दृष्टव्य है । शरीर की आभा सूर्य के प्रकाश जैसी है और चांद की चांदनी की तरह उसका निखरा हुआ शीतल उजास है । दूध के ऊफान सा यौवन, जमे दही सी शरीर की मांसलता और गठन, नींबू की फांक से नेत्र, जिव्हा पर अमृत का वास है, बेल की भांति भुजाओं की ढलान यानि सौष्ठवपूर्ण भुजायें हैं, नाभि रत्नों की प्याली, ऐड़ियां सुपारी सी है, इत्यादि रूप सौन्दर्य का विराट् चित्र खींच देते हैं -

`` सूरजजिसो र उजास, मिरगानैणी राज ।``[१]

दीपक को सम्बोधित कर `दिवलो` गीत में नायक आकुल सा कह रहा है -

जगियो जगियो हां रे मोजी दीपला,
तू, जगियो मोजम रात
निरख्यां निरख्यां हो अे मोजी मिरगानैणी ।

और गीत अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य वर्णन के साथ बढ़ता जाता है ।

पनघट के वातावरण में निस्सृत गीतों में `ईंढोणी` में भी पणिहारी का स्वरूप और श्रृंगार सुन्दरता से बिखर रहा है -

`` सोना री सिर धरव्यो कलसड़ो, ईंढूणी गज मोत्यांरी
दिखणी चीर ओढ़ कर चाली, रिमझिम, रिमझिम पणिहारी ।``[२]

दक्षिणी चीर के घूंघट पर उसका प्रियतम और अन्दर `लाढ़ो` पणिहारी गले में नौसरहार, झूमताबाजूबंद, शीश पर रखड़ी, नाक में नथड़ी, घाबलिया (घाघरा) सवालाख का और रुनझुनाती पायल की छमछम में गज-मुक्ताओं से जड़ी `ईंढाणी` पर जब वह सोने का कलश लिये पानी भरने को निकलती है तो इस सौन्दर्य विभूति पर क्या प्रकृति का कण कण थिरक न उठ जाता होगा?

---

१. परिशिष्ट गीत २ (मिरगानैणी)
२. परिशिष्ट गीत सं० ३ (ईंढोणी)

इसी सौन्दर्य आकर्षण से राजस्थानी नारी अपने प्रियतम, प्रेमी को रिझाती है तभी तो उसका प्रियतम कहता रहा है -

`` दारू मीठो दाख को जी, सूरां भली सिकार
सेजां मीठी कामणी, और रण मीठी तरवार ।``

राजस्थानी गीतों में जहां ललना के आंगिक लावण्य का चारु चित्रण किया गया है, वहां पुरुष के सौन्दर्य का भी सुष्ठु चित्र खींचा है जो दृष्टव्य है - बना ओ भीम सरीखा मरसींवा थे
अरजन रै उणियार मोती मैल में
म्हारी सगी नणदरा वीर ओ मोती मैल में ।

पुरुष की देहयष्टि तथा पौरुष भरे सौन्दर्य का चित्रण किया गया है जिसे देखकर प्रत्येक रमणी आकृष्ट हुये बिना नहीं रहती । जिसने पति पा लिया है वह उसके सदैव सामीप्य- सुख की अभिलाषिणी बनकर ही रहने में अपना सौभाग्य मानती हुई कहती है -

बना थाकी आंख्या कामणगारी,
मां पर जादू होग्यो सा ।
थां की म्हां की जोड़ी सोवै
जोड़ी में दुनियां को मन आयो सा
बना थांकी आंख्या कामणगारी
मां पर जादू होग्यो सा ।

यही सौन्दर्य का पर्व पति-पत्नी को परस्पर वशीकरण मंत्र से बांध देता है । एक दूसरे पर रीझते नयनों के सीमांत प्रदेश जीवन में आनन्द और प्रेम के प्रसून खिला देते हैं । पत्नी प्रेम को अपना सर्वस्व मानती है । वह प्रकृति के भिन्न-भिन्न उपादानों में स्वयं को समाती हुई पति के सानिध्य की कांक्षा करती कहती है -

बना मैंदी सरीखा रावणा बना राखूं मुठड़ी मांय
बना सुरमै सरीखा लागणा, थानै राखूं पलकां रै मांय
बना सूरज जैसा फूठरा, राखूं फूलां छाई सेज में
बना मोती जैसा ऊजला, राखूं नथड़ी रै मांय ।

प्रस्तुत गीत में कितना भावगांभीर्य एवं औपम्य विधान भी है - जो सचमुच समीचीन है । एक ओर पति दैहिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है तो साथ में आन्तरिक गुणों को भी धारण किये हुये है । ऐसे प्रियतम को प्रिया अपने सुहाग के चिन्ह रूप नथड़ी के मोती में पिरोकर रखती है । सौभाग्य स्वरूप के लिये नथड़ी ही योग्य स्थान है जो मुखारविंद की शोभा को द्विगुणित करता है । कोमल कल्पना के साथ सौन्दर्य विधान कितना सार्थक है और साथ में पार्थक्य कदापिसह्य नहीं । इसके पश्चात् जीवनचर्या में ऐसी घड़ियां आती हैं कि जीवन रसमय हो जाता है फिर तो प्रियतमा के साजन उससे रूप मांगते हैं और वह अपनी कर्तव्य व्यस्तता के बीच अपना रूप देने को तैयार भी हो जाती है । प्रियतम नौकरी पर चले जायेंगे तो फिर उसके रूप की क्या सार्थकता ? रूप-महत्ता का भाव इस गीत में बड़ा ही सुन्दर व्यक्त हुआ है -

" रसिया फागण आयो, चार कूंटरों चोंतरो हो रसिया
जिसपे कातूं सूत, तो सासू मांगे कूकड़ी तो साजन मांगे रूप ।"[१]

फाल्गुन का मदमस्त माह और सौन्दर्य का उत्सव तभी तो नायिका ' सूरज थाने पूजती हो ' कहकर सूर्यदेव से विलम्ब से उदय होने की विनती कर रही है । उसका प्रियतम ही तो उसका रूप देखेगा और उसकी मधुर मधुर चाल ।

साहित्यिक रचनाओं में जायसी, बिहारी आदि ने श्रृंगार रस के रूप-वर्णन पक्ष में नायिका को ही अपना लक्ष्य बनाया है । लोकगीतों में भी नारी का रूप और श्रृंगार-वर्णन ही अधिक निखरा है किन्तु पत्नी द्वारा पति के रूप का वर्णन करना भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल आदर्श व नारी के हार्दिक पति-प्रेम की अभिव्यंजना करता है । पत्नी सखियों से अपने पति की रूप-गरिमा इस प्रकार अभिव्यक्त कर रही है -

" देखो ए सहेल्यां म्हारा सायबारो रूप,
जांणूं एक निकस्यो चांदनी चांद काजीराज ।"[२]

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ४
२. परिशिष्ट गीत संख्या ५

अपने पति को ``लांबो, डीगो, पातलो, सांपलियो सिरदार, बांको कोई राजा गढ़कोट को जी राज `` कहकर उसके ललाट `राते राते` (रक्तिम आभा वाले), नयकद्वीप, तीखी नाक, कटार सी दीर्घ मूछें, नारंगी की फांक से रंगीले होठ, श्वेत दंतपंक्ति का वर्णन करके उसका हृदय उत्फुल्ल हो उठता है । इसमें राजस्थानी पुरुष का सौन्दर्य चित्र-खचित सा हो उठा है । दाम्पत्य जीवन को स्वर्ग बनाने में नारी की भावना के ऐसे अनेक शाश्वत चित्र मिलेंगे, जहां आकर्षण और अनुरक्ति ही उक्त चित्रों की आधार-भित्ति है । विशिष्ट का विशेष से संगम होना गर्व करने की वस्तु है । उपयुक्त पति मिलने पर यह गर्व भी द्विगुणित हो जाता है । उस समय संसार के अन्य आकर्षण उसे स्खलित नहीं कर सकते -

`` थांके कसूमल पागड़ी म्हाके कसूमल घाट
दोयां की जोड़ी भली, झक मारे संसार ।``

नारी का ऐसा रूप-गर्व और यौवन का दर्प आत्मशक्ति के विश्वास के साथ विश्व की कुप्रवृत्तियों को चुनौती भी दे सकता है ।

रूप वर्णन का एक `मरवण` गीत नितान्त अनूठा है । प्रियतमायें सदा प्रेमी के हृदय में बसी रहना चाहती हैं । अपने सौन्दर्य से प्रियतम को छककर अमृत-पान करना चाहती है । इसमें नारी स्वयं भांति भांति से आलंकारिक ढंग से अपने रूप के वर्णन द्वारा पति को भरपूर आकृष्ट करने की चेष्टा करती जाती है, आकृष्ट उसका प्रियतम परदेश न जाये और आज की रात प्रियतमा की सेज पर ही बिताये -

`` है सोना नै सरीसी थन पीलरी हो राज
राज ढोला राखो नी थांरे हिवड़े रे मांय
परभाते सिधावजो आज रेवोनी आलीजा हो राज ।``[१]

प्रेमियों का संसार जनसाधारण से भिन्न होता है, उनकी अभिलाषायें, उनकी आंकाक्षायें, उनकी कामनायें अपना संसार अलग ही लिये रहती हैं । ऐसा महंगा व्यक्तित्व है प्रियतमा का, उसके आधार पर ही अपने `आलीजा` को अपने पास रख लेना चाहती है । उसे अपने मोती महल में विभिन्न प्रकार

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ६

से रखने में ही संतोष है -

सूरमै सरीखा सांवला थानै राखूंला नैणां मांय ।
सोने सरीखा सोलमा थानै राखूंला तिलड़ी मांय ।।

अब इस रूप-गर्विता के नाज-नखरे भी दर्शनीय है । ऐसी रूपसी सरोवर पर पानी भरने जायेगी तो क्या नज़र न लग जायेगी ? उसका श्रृंगार फीका न हो जायेगा ? संयोगी - जीवन के ऐसे भाव कुछ नृत्य गीतों में व्यक्त हुये है । पणिहारी कह रही है -

`` सरवर पाणीड़ा नहीं जाऊंसा, नजर लग जाये ।``[१]

तो इधर एक अन्य नारी अपने आकर्षण को ज्यों का त्यों बनाये रखने के लिये ` पाला ` भी काटने को तैयार नहीं है । वह मारवाड़ से पाला मंगाने की प्रार्थना कर लेती है और कहती है -

`` पालो नहीं काटूं सा, म्हारी गोरी सी हथेली में छाला पड़ग्याजी ।``[२]

तो कहीं अपनी बाजुक ``पातल सरसी पातली घण`` का ख्याल पति भी रखता है । मेंहदी से रचे उसके हाथों और नरम कलाई से वह अपरिचित नहीं है । वस्तुत: यही तो उसके हृदय की प्रीत है । पिछोले के किनारे शीतवायु, श्यामल घटाओं में मेह का जोर, संकीर्ण मार्ग और फिर साथ में कोई सहेली नहीं, पति के स्नेह का आभास पाकर पत्नी कितनी उमंगित हो उठती होगी, मनोवैज्ञानिक तथ्य है । यह रसीला गीत इस प्रकार भावों को अपने में समेटे हुए है -

`` पीछोले री पाल माथे ठंडी चाले बाल गोरी,
पाणी मती जाइजे रे ।``[३]

इस प्रकार राजस्थानी लोकगीतों का संयोग-श्रृंगार अपने रूप-वर्णन की अद्भुत छटा लिये हुए व्यक्त हो रहा है जहां दिव्यता पवित्रता और नितान्त व्यावहारिकता है । कहीं आडम्बर नहीं, द्वैत भाव नहीं । ` लाख मोहर री नार ` अपने गोरोजी फूल गुलाब के साथ और ` मिरगानेणीरा भरतार ` अपनी ` सेज्यां रो सिंणगार ` के साथ परस्पर रिझाते जीवन की अनमोल घड़ियां व्यतीत करते जाते हैं ।

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ७
२. परिशिष्ट गीत संख्या ८
३. परिशिष्ट गीत संख्या ९

राजस्थानी नारी की तो कभी यहां तक स्थिति थी कि थाली में बैठकर उसका और उसके प्रियतम का गठबंधन होता था । प्रणय की उमंगों से अनजान उसे तो अपने प्रियतम की पहचान तक न थी, स्वप्नों के झिलमिलाते संसार में प्रियतम का संयोग होता है और वह मिलातुर हो जाती है । कभी अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती ससुराल के काम धंधों में जीवन व्यतीत करती जाती है और उसे ज्ञात तक न हो पाता है कि एक दिन अनजानी सूरतवाला प्रियतम अपनी उदास प्रियतमा के समक्ष आ खड़ा होगा । राजस्थानी लोकगीतों में संयोग की आतुर घड़ियों को खूब संजोया है । उन घड़ियों में नायक-नायिका के हृदयों के स्पंदन की क्या गति होती है, गीतों की एक एक पंक्ति में भावों को प्रकट करती जाती है । लोकगीतों की दुनियां में सर्वाधिक लोकप्रिय, साहित्य, संगीत, कला से समन्वित सर्वोत्तम गूंज उठती है।संयोग श्रृंगार के 'पणिहारी' गीत की, जिसका नाम लेते ही असंख्य भाव लहरियां हृदय में हिलोरें लेने लगती हैं । श्रावण का रस भीना मदमस्त रंगीला राजस्थान के जन जन के हृदय को अप्लावित कर देता है, और लोकगीतों की लहरियां हृदय का संगीत बनकर वर्षा की रिमझिम करती झड़ियों के साथ होड़ लगाती है । इस ऋतु का सबसे बड़ा आकर्षण है राजस्थानी पनघटों का जहां राजस्थान की अलबेली, छबीली, नवेली पनिहारिनों का समूह - '' झूलरो'' के वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर मधुर स्वर से उमंगित हो आते जाते गीत गाकर संगीतमय दृश्य उपस्थित किया करती है । परदेशी की प्रीत के पगे भावों को लेकर गीतों की रानी यह 'पणिहारी' अपनी विशिष्ट महत्ता धारण किये चलती है । इस गीत का भावार्थ बड़ा ही मनोहर है । विवाह के पश्चात् बिना सुहागरात मनाये नायिका का पति 'राजाजी की चाकरी' में दूर देश चला जाता है । दीर्घावधि पश्चात् ऊंट पर चढ़कर आते हुए नायक को सरोवर पर पानी भरती अपनी एकाकी, नीरस, उदास सी पत्नी दिखाई दे जाती है । पति तो उसे पहचान लेता है किन्तु पत्नी नहीं पहचान पाती । पति का हृदय तो उमंगित हो रहा है । आगन्तुक पति अनेकानेक प्रलोभन देकर उसकी शीलपरीक्षा लेता है । सती सावित्री सी उसकी पत्नी वर्षों से अपने प्रिय की मिलन आस में आंखे बिछायें बैठी है । उसकी उदासी उसके घड़े को जलमें तैरायें रखती है । अन्यमनस्कता की स्थिति में उसे जलसे भरने नहीं देती है । ऐसी स्थिति में एक पुरुष की धृष्टता भरी बातों को सुनकर उसका रक्त खौल उठता

है, उसका प्रियतम भय, शील, अप्रत्याभिज्ञात पति की धृष्टता को डसने के लिये नाग तथा जलाने के लिये अग्नि बन जाता है, आगन्तुक की एक नहीं चलती और अपने ऊंट पर गन्तव्य स्थान पर चल देता है । इधर क्रोध से भरी हुई पत्नी घर पहुंच कर अपनी सास को इस ऊंट सवार की धृष्टता की सम्पूर्ण कथा सुनाती है । पति तो पहिले ही घर पहुंच चुका था, पत्नी की बातें बड़े विनोद से अन्दर सुन रहा था । सास अपनी बहू से उस ऊंटवाले की शक्ल-सूरत का परिचय पूछती है, ऐसी बात सुनकर आश्चर्यान्वित सी हुई भोली भाली रहस्य न समझती हुई उत्तर देती है ``वह देवरजी जैसा सुन्दर, और ननदबाई जैसी उसकी शक्ल सूरत थी ।`` सास तो सारी बात भांप ही गई थी, उसने मुस्कराते हुए कहा - ``ऐ मेरी भोली बहू ! वही तो तेरा भरतार है ।`` पणिहारी चुप, सास की बात सुनकर उसकी मनोदशा कैसी हुई होगी इसका अनुमान लगाना जितना सरल है उतना ही कठिन भी । कैसे विनोद का पात्र बनी भी वह । और तो और, उसने अपने दीर्घ-प्रतीक्षित पति को भी न पहचाना । सारी पूर्व मलिनता और आक्रोश हृदय की आल्हाद-रागिनी तरंगों में एकाएक ही परिणत हो गया होगा, धन्य हो उठती है, आन्तरिक मिलन की वे घड़ियां । गीत तो सास की बात पर ही समाप्त हो जाता है परन्तु पनिहारी की मनोदशा की सुखद कल्पना तो अशेष ही रह जाती है । गीत इस प्रकार है -

`` काली र कलायण ऊमटी, पणिहारी र लो ।``[१]

नायिका की विर-साध पूर्ण हो जाती है । पूर्ण रूप से श्रृंगार इस की परिपुष्टि इस गीत में परिलक्षित होती है ।

इस गीत के अतिरिक्त अन्य गीत में भी विरह की दीर्घा विधि पश्चात् प्रिय-संयोग के चित्र थिरक कर अपनी अपनी कथा कह रहे है । संयोग की घड़ी आ रही है, आह्लादपूर्ण घड़ी में आंखों को विश्वास नहीं होता कि सचमुच उसके प्रियतम ही आ रहे है ? उच्चतम अट्टालिका के अग्रभाग पर खड़ी प्रिया ने उस रास्ते पर अपनी आंखें बिछा रखी है । आगमन की सूचना

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या १० (पणिहारी)

है, पर हृदय धड़क रहा है, ``आवेंगे या नहीं ----- और ----- और तभी केसरिया, कसूमल सा रंग दिखाई दे गया है, यह तो प्रवासी प्रियतम सहित युद्धक्षेत्र से लौटाने वाला दल ही होना चाहिए -

`` आयो आयो मेवाड़ा रो साथ
आयो कसूमल, नै आयो केसरिया ।``

और तभी घाटी पर मलूक्या है सैल
घाटी रो नगारों में सुण्यो जी राज ।

किरणों से चमकते मैदान में भाले भी दिख गये है । घाटी पर चढ़ते दल के नक्कारें भी कर्णगत हो रहे हैं, फिर-घोड़ला री बाजी खुरताल, हसत्यां रा बाज्या वीर घंट टोकरा, लो आही गये प्रियतम । ऐसे भाव अनेक गीतों में है । इसी तरह एक गीत है `जलाला अथवा जलाल` पति का पर्यायवाची शब्द है । मिलन घड़ी के उत्तरोत्तर सोपान एकके बाद एक आये है जिनमें नायिका का उत्कट उल्लास व्यक्त हो रहा है -

` सइयां मोरी ए आयोड़ो सुणीजेरे जलालो देस में ।`[१]

सखियों मैं सुनती हूं, आज प्रियतम देश में आ गये है । चारों दिशायें हर्ष से विभोर हो उठी हैं । मैं आगन्तुक पर अपने को न्योछावर करूंगी और मोतियों से आरती करके उनका स्वागत करूंगी । धीरे-धीरे ताल, पहाड़ी, बाग, बावड़ी, बाज़ार, घर की पोल, आंगन तक उसका ``बांकड़ली मूछ्यां से सिरदार`` अपनी प्रियतमा के लिये सौभाग्य का `मेंह` बरसाता पहुंच गया है, और प्रियतमा का अनुरोध है प्रियतम को उसके पास भेज दिया जावे, प्रियतमा अपने स्नेहानुराग भरे नयनों से उसे अपने हृदय की निःशब्द उमंगमयी भाषा, सबकुछ समझा देगी । उसे इतना हर्ष है कि हर्ष से भरी वह प्रियतम से मिलन बेला में बोल भी नहीं पाती है और प्रियतम देखता है - ``पूठ फेर घणा बाखड़ी जी राज ।`` गीत में उमंग और प्रेम जल से सराबोर मिलन का पूर्ण चित्र बहुत ही हृदय ग्राही बन पड़ा है -``चांदा थारी चानणी सी रात, चांदरे चानणिये ढालो आवियो जी राज ।`` वियोग के बाद मिलांकादा और तीव्र हो जाती है । संयोग में थोड़ी देर का वियोग भी नारी के लिये पहाड़ हो जाता है -

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ११

" साजन आया है परदेश सूं जी, ढोल्यो बिछायो रंग मैल
सुख-दुःख क्यां ने पूछो राज, घड़ी पछी पूछ्या राज
हिवड़े सूं चेप डारो कालजो जी राज । "

जायसी के पात्रों की तरह यहां मूर्छित हो जाने की क्रिया में नहीं हो रही, वरन् यहां तो सुख-दुख की भावना भी संयोग में हृदय से आलिंगन करने की कामना में घुल-मिल गई है, वार्तालाप के लिये तो और भी घड़ियां आयेंगी किन्तु हृदय से लगने की तो यही एक घड़ी है ।

प्रेम-मिलन हो रहा है । इधर मिलन की उत्कंठा से आतुर प्रियतमा ने प्रियतम के स्वागतार्थ क्या क्या नहीं कर डाला है, रंगमहल को अपने प्रेम और लगन से जलाये हुए दीपक से जगमगा दिया है । सोने का दीपक जिसमें घी से स्निग्ध रेशम की बाती है, चांदी की थाली में सजा हुआ है -

" सोने रो म्हे दिवलो घड़ास्यां --- ।"[१]

इस जगमगाती ज्योति की किरणों में उसका प्रियतम पदार्पण करेगा ।

वियोगी संयोगी बन गये, हर्ष से फूली-फूली पत्नी के मनोभाव प्रेम से सने हैं । प्रेमपूर्वक भोजन का आयोजन और प्रियतम का खिला-पिला देने पर पंखा झलकर सुलाने में आदर्श पत्नीत्व उत्फुल्ल हो उठा है ।[२] ऐसे निश्छल भावों की पावन गंगा बहाने में ये लोक गीत ही तो सक्षम है ।

दम्पत्ति मिलन के पश्चात् जीवन धारा प्रवाहित होती जाती है । इस जीवन धारा के नित नये पक्ष होते है - नित नई घटनायें होती है । परिस्थितियां कभी कटु होती है कभी मधुर होती है । राजस्थानी लोकगीतों में बड़, नीम, नीम्बू, मरवा आदि वृक्ष संयोग-सुख के प्रतीक है । इनके उपमानों द्वारा यौवन के आधिक्य की व्यंजना गीतों में है -

" यो बड़लो गहर घुमेर डालां तो पानां जोवन झुक रह्यो ।"

गीत 'नीबूड़ो' संयोगियों की भावनाओं को समेटे हुए है -

" उदियापुर सूं बीज मंगाय, ओ घण वारी ओ हंजा ।"[३]

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या १२
२. परिशिष्ट गीत संख्या १३
३. परिशिष्ट गीत संख्या १४

अनेक गीतों के भाव एक दूसरे से मिलते जुलते हैं, बस कुछ हेर-फेर के साथ गाये जाते हैं । सभी में वृक्ष के पत्ते, शाखाओं को न तोड़ने का निर्देश है । बड़े यत्न से अभीप्सित वृक्षों को अंकुरित पल्लवित, पुष्पित किया जाता है । संयोगी जीवन में व्याघात पंहुचाने वाले होते है ननद और देवर । कितनी सरल व्यंजना है । उन्हें तोड़ने की स्थिति में उन्हें मना किया जाता है किन्तु तब भी नहीं जानते तो देवर को बहू और ननद को मोतियों के हार दिये जाते हैं । अन्यथा भावी विवशता और आशंका से ही दम्पत्ति की आंखे छलछलाने लगती है । इन वृक्षों की छाया तले झूला डालकर दम्पत्ति झूलेंगे, जाजम बिछाकर चौपड़ खेलेंगे, स्वादिष्ट पदार्थों का भोजन करेंगे और सुख शैय्या पर सोने का आनन्द लूटेंगे, मिलन के क्षण स्वर्णिम होंगे । इस प्रकार इनका जीवन व्यतीत होता है । लोकगीतकारों ने दाम्पत्य जीवन की आशा-आकांक्षाओं को अति मार्मिकता से व्यक्त किया है ।

अपने अटल सौभाग्य की नारी की कामना के साथ सबसे बड़ी उसकी कामना रहती है वस्त्रालंकारों की । लोकगीतों में इनकी मांगों को खूब संजोया गया है । एक चित्र सा खिंच जाता है । गृहकार्यों से निवृत्त हो पति-पत्नी बैठे है, तभी पारस्परिक वार्तालापों में पत्नी की मांगों की दीर्घ सूची प्रस्तुत होती है और पत्नी के प्रति निष्ठ पति भी उन्हें स्वीकार करता जाता है । इन वस्त्रालंकारों को मंगवाने के लिये प्रिया अपने रसिक पतियों से अनुरोध किया करती है । ऐसे प्रसंगों से दाम्पत्य-जीवन में मधुरता आती है, जीवन उल्लासपूर्ण रहता है, भले ही मांग पूरी-करने का वचन देकर भी मांग पूरी न कर सके तथापि दम्पत्ति के हृदय में रस घोलनेवाला पंचामृत तो तैयार हो ही जाता है ।

एक गीत है, पत्नी ने अपने पति के समक्ष कई मांगे रखी, परन्तु वह सुनी अनसुनी करता गया । पत्नी बड़े असमंजस में पड़ गई । उसने भी सीधा सा उपाय खोज निकाला कि जब तक उसकी मांगे पूरी नहीं होगी, तब तक के लिये वह पाला काटना त्याग देगी और ऐसा ही किया । पति को पत्नी के रूठने का कारण ज्ञात हुआ- उससे पूछा, बस फिर क्या था, पत्नी ने एक

के बाद एक अपनी आकांक्षायें प्रस्तुत कर दी -

`` म्हाने जोधपुर सूं चूंदड़ी मंगवादो, मंदवा मारूजी,
म्हें पालो कोनी काटूला ।``[१]

इन दुनिया भर की मांगो में जोधपुर से चूंदड़ी मंगवाना, सोनी को बुलाकर चूड़ी घड़वाना, दांतों पर चूप जड़वाना अपनी सौत को पिहर भिजवाना, पाला काटते काटते नाजुक हाथों में छाले पड़ जाने के कारण वैद्य को बुलवाना, बूंदी से फूंदी और कोटा से गोटा मंगवाना आदि है । पत्नी-प्रिया पति को उसकी सभी मांगे मंजूर करनी पड़ी और फिर पत्नी मुस्कराती हुई उसके साथ पाला काटने को तैयार हो जाती है ।

`` काले रंग री चूंदड़ी ले दे रे बालमवा

काले रंग री चूंदड़ी जब आछी लागे, माथे पे रखड़ी ले देरे बालमवा ।`

ऐसा ही एक गीत है `लालर` (वस्त्र विशेष सौभाग्यसूचक) है । जिसमें एक वस्तु है तो दूसरी के बिना उसका जी तरसता है - ``लालर लेदो ओ नोखीला मारो जीव तरछे ।``[३] गणगौर और होली आदि त्योहारों के आनन्दोत्सवों में सजने धजने की कामना और आभूषण - प्रियता नारी में सहज ही रहती हैं । पति की खुशामद करती हुई -

`` थांको तो म्हांको जिवड़ो एक केजी ज्यूं ककरी में रेसम डोर``,

कहकर कभी उपालम्भ देकर अपनी आतुरता वस्त्रालंकारों के प्रति व्यक्त करती है-

``माथा ने मंवर घड़ाव जो जी ।``[४]

नारी का हृदय आभूषणों के प्रति आवश्यकता से अधिक आकर्षित रहता है । वह अपने प्रियतम से विभिन्न आभूषणों की मांग करती कहती है -

`` माथे ने मैमद लाव मंवर म्हारे कांना कुंडल लाव
ओ जी म्हारी रखड़ी रतन जड़ाव ।``[५]

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या १५
२. परिशिष्ट गीत संख्या १६
३. परिशिष्ट गीत संख्या १७
४. परिशिष्ट गीत संख्या १८
५. परिशिष्ट गीत संख्या १९

नायिका ने अपने प्रिय से अनोखे एवं असाधारण वस्त्रों की याचना की जिसे जानकर प्रिय भी आश्चर्यचकित हो गया, लेकिन प्रिया ऐसे अद्भुत वस्त्रों को संकलित करवाने पर कटिबद्ध है -

हो जी बना अंबर री धाघरी सिवाय
धरती री लांवण विरादो जी
हो जी बना तारां री बूंदड़ी रंगाय
बीजली री गोट करादो जी

प्रिया की अपनी वेशभूषा- सज्जा की कल्पना इतनी असम्भव है फिर भी प्रेमियों के हृदयों को सान्त्वना देने के लिये संभव है । ऐसी अलौकिक कल्पना वेश-भूषा विधान में लोकगीतों की मौलिक देन है ।

पत्नी ने अपने मातापिता, भाई बहिन, भाइ, भाभियों तथा समस्त परिवार को अपने पति के लिये छोड़ दिये है तो इतना तो अधिकार उसका भी है कि वह आभूषणों की मांग करके अपने प्रेम की कसोटी करे, लेकिन आत्मीय रागात्मक संबंधों की पूर्ति भौतिक अलंकार कर सकेंगे ? पर पत्नी का मन-मयूर इतने मात्र से प्रमुदित हो जाता है कि यहां भी मेरी सुनवाई करनेवाला मेरे प्रेम का भाजन पति ही है, जिसकी प्रीति के सामने सारे स्नेह-संबंधों की प्रीति न्यौछावर की है । इसलिये वह महत्त्वकांक्षी बनकर अनोखे महल एवं वस्त्र बनवाने की इच्छा दर्शाती है -

बनासा अंगुरा री हवेली चुणाय
छाजा लगाय दो दाड़म दाख रा
बनासा धरती केरो लेंगो सीवाय
तूई लगाय दो वलती रेल री ।

ऐसी अनहोनी हवेली में संयोगी दाम्पत्य सुख का लाभ लेंगे । एक अन्य गीत में पत्नी ने ऋतु विशेष में विशिष्ट प्रकार के कपड़े तथा कब कहां रहना चाहती है उसकी अभिलाषा भी अपने प्रियतम को दर्शायी है -

सियाले रा आपरै, ऊनाले रा वापरै
चौमासे रा नानांणो, पौंचा दो म्हारा राज ।
सियाले रा मालिये, ऊनाले रा साल
चौमासे रा जालिया झुकादो म्हारा राज ।

और वस्त्र - सियाले रा सालू
ऊनालै रा पोमवौ

चौमासे रा घनक (चूंदड़ी) मौला दौ म्हारा राज ।

इस तरह से वस्त्राभूषणों से सज्जित गोरी अपने प्रियतम के साथ मान-मनुहारें करती हुई रंगमहल में आनन्द उपभोग करने में ही अपने प्रेम की सार्थकता मानती है -

कटोरौ लाया दूध रौ
कटोरै में दाड़म-दाख
मिसरी है तोला तीसरी जी म्हांरा राज ।

इसमें कहीं ऊहात्मकता एवं कोरी कल्पना का उड़ान नहीं है अपितु शुद्ध समर्पण की भावना है जिसके ये अधिकारी है ।

ऐसा प्रियतम जिसने अपनी प्रिया की सभी कामनायें पूर्ण की हो उसके लिये तो प्रेमिका के हृदय में ``दूधां मेह बूढता `` है उसे तो `हिवड़ै मायलो जिवड़ौ`` करके रखने में ही उसका सौभाग्य है । हृदय का जीव बनाकर रखने की कल्पना बहुत ही उत्कृष्ट कोटि की है । यह विशेषण प्राणेश्वर और प्राण प्रिय से भी चार कदम आगे बढ़ गया है । यह `हिवड़े का जीवड़ा` किसी द्वारा थोपी हुई नहीं अपितु कन्या द्वारा स्वीकृत है ।

राज थांनै हिवड़ै मांयलौ जिवड़ौ करनै राखां
मैलां - मूधी रै कमधजियै ने घणी खमा ।

पत्नी के लिये प्रिय का सहवास ही सौभाग्य है । वह अपने प्रिय के सुखों के लिये सब कुछ व्यवस्था करने वाली अनुकूल नायिका, जिसके चरित्र में भारतीय आदर्श है वह कहती है - राज थांनै जोधांणै रौ हाकम करनै राखां
राज थांनै सियालै रौ सूरज करनै राखां ।

वह अपने पति को गर्मी का आम, चौमासे का चंपा तथा वर्षा ऋतु का बादल बना कर सदा साथ रहने की सुखद कांक्षा रखती है । यह पति उसका मनमांडे किये विवाह का पति नहीं वरन् प्रेम विवाह का प्रेमी भी है, जो उसका बचपन से प्रेमी रहा है -

बापू सायब म्हारौ बालपणा रो गोठियो ।

ऐसी प्रगाढ़ प्रीति के लिये गोरी अपना अस्तित्व प्रिय में मिटाकर भी प्रिय में अपना स्थित्व रखना चाहती है । उसके प्रेम में समर्पण और उत्सर्ग है और प्रेम की चरम सीमा उत्सर्ग एवं समर्पण में ही समाहित होती है इस भाव का परिचायक यह गीत है - फूल गुलाब रो हूवती आलीजै रै
पैच कुणगै पर रैती ।[१]

इस तरह प्रेम रस में सराबोर प्रेमी युग्म अपने संयोगी जीवन को विविध त्यौहारों के माध्यम से मनाने में भी साहचर्य को प्रधानता देते है ।

'सातवार नै नौ तैंवार' त्यौहारों से पूर्ण राजस्थानी संस्कृति से कौन परिचित नही है । आज भले ही त्यौहारों उत्सवों की ओर नगर निवासी रुचि न लें तथापि इनकी महत्ता इनका गौरव अक्षुण्ण बना रहेगा । त्यौहारों को पूरी उमंग से मनाना, उसके उल्लास को लूटना राजस्थानी संस्कृति की विशेषता है । ऐसे अवसर पर प्रवासी भी किसी तरह घर पर ही रहने का प्रयत्न करते है । जन-जन का हृदय झूम उठता है । प्रिय प्रेमी एवं संयोगी हृदयों का तो कहना ही क्या ? प्रत्येक त्यौहार संयोगियों के लिये अपनी मधुरिमा से श्रृंगार करता है जिस सुख मकरन्द में लिपट साहचर्य का आनन्द मनाते हुये पर्वोत्सव मनाते हैं । चाहे दिवाली की जगमगाती दीपमाला हो, चाहे होली के बिखरते रंगीले रंग हो, चाहे तीज के फूलों की बहार हो या गणगौर का मांगलिक पर्व हो, सभी में संयोगी प्रेम की अविरल धारा बहाते प्रतीत होते हैं, देवगण भी उस आनन्द की राशि में अवगाहन करने को लालायित हो उठते होंगे । इन पर्वोत्सव के गीतों में एक दूसरे के प्रति अमित अनुराग की लहरियां दर्शित होती हैं ।

चैत्र-मास में बासंती पवन जब प्रकृति के प्रांगण में यौवन का संदेश लेकर आता है तो मानव-हृदय भी प्रेम के देवता कन्दर्प से अभिभूत हो उठता है । प्रत्येक युवा-युवती हृदय में उल्लास एवं क्रीड़ा-कौतुक की वृत्ति जाग उठती है । व्यक्ति समष्टि में लीन होकर अपने हिय की हिलोर को सामूहिक रूप में प्रकट करता है । रंग-गुलाल, उद्यान-गोष्ठी, फूलपति, गैर, सौभागव्रत और अनुष्ठानों की धूमधाम में नारी कंठ के संगीत की रसवंती माधुरी उमड़ पड़ती है । जीवन में पुलकित,

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या २०

हुलसित रसों में डूबी मानस की शाश्वत अभिव्यक्तियां अपना रूप साकार करती हैं। होली आगई है, मदमाती, रसरिझवार और चहल-चिरौरी करती रसराती सी। श्रृंगाररस की मादकता से पूर्ण गीतों की बहार भी लाई है। होलीदहन का दूसरा दिन रंगों का, रंगभरी पिचकारियों का और प्रेम-रस का दिन होता है। संयोगी जीवन की मादकता और भी बढ़ जाती है। लो, कलम यहीं रह गई, उधर पिचकारी रंगफुहारों को छोड़ती हुई अपनी क्रीड़ा करने लगी है, रंगों की मार से बचती हुई नायिका पूछ रही है -

`` कुण मारी पिचकारी, गोरी रा बदन पे कुण मारी पिचकारी मोय बताओ।`

यौवनपूर्ण गोरी के बदन पर किसने पिचकारी मारी। उसके मस्तक पर मेंमद की श्री विराजमान है तो रखड़ी की छवि अनूठी है। अब उसे ज्ञात हो गया है कि ऐसे में, ननदबाई के `बीर` और सासूजी के पुत्र ने ही यह पिचकारी मारी है। इस प्रकार क्रमशः पायल, बिछिया और रमकोला आदि आभूषणों के नाम दोहरा कर गीत की पूर्ति की जाती है। तभी तो गोरी के रूप पर पिचकारी ने अपना करतब दिखाया था और यह प्रश्न भी हुआ -

``काय की पिचकारी, काय की डांडी, तो काये की गुलक्यारी जी``,

सहयोगी जीवन में उल्लास बिखेरने वाली -पिचकारी- ऐसी वैसी थोड़ी ही है वह तो - ``सोने की डांडी, रूपे की पिचकारी`तो `केसर की गुलक्यारी` है। इस गीत में तो गोरी ने ``पिचकारी की मार सहली, पर दूसरे गीत की नायिका कम नहीं वह `बंसीवाले` से `फाग` खेलने के लिये लालायित हो रही है -

`` ननंद बाई म्हने बरजो मति म्हे तो बंसीवाला से खेलूंगी फाग।``[२]

श्रृंगार पूर्ण अभिलाषायें, प्रणय-चेष्टायें राधाकृष्ण के माध्यम से व्यक्त हो रही है। इधर होली खेलने में व्यस्त नायिका को शरीर के भीग जाने का उतना भय नहीं जितना कि `नैनों के भीग जाने का` है -

`` गेल म्हारी छोड़ो, डगर म्हारी छोड़ो
श्याम भींज जावांगा नैनन में।``[३]

कैसी गूढ़ और सांगोपांग अभिव्यक्ति है।

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या २१
२. परिशिष्ट गीत संख्या २२
३. परिशिष्ट गीत संख्या २३

पति-पत्नी एक पल भी एक दूसरे से विलग नहीं होना चाहते । फिर रंग के इस उत्सव में एक दूसरे की अनुपस्थिति में कैसे रह सकते है ? 'फागण का मीना' आगया । प्रियतमा ने प्रिय को बुलाया, इस माह में प्रिया का आमन्त्रण शिरोधार्य प्रियतम आगये, भला ऐसे मास में प्रियतमा का अनुरोध कैसे टालते ? पर आने के बाद, जबकि उसके सभी साथी 'फागण' गारहें, तब न तो प्रियतम कहीं बाहर जाये न ही प्रिया बाहर जाये, कैसी उत्कट कामना झलक रही है -

"साथीड़ा फागण बोले रे, मीनो फागण रो ।"[१]

एक दूसरे से विलग न होने के लिये परस्पर एक दूसरे को 'बींद-बींदड़ी' बनाने तक को तत्पर हैं जिससे कि न वह अपनी साथणियों (सखियों) में जाये और न ही वह 'साथीड़ां' में जाये ।

अपने जीवन को उज्ज्वल, पवित्र एवं सुखमय बनाने के लिये कुमारिकाओं ने गणगौर से मनोनीत वर मांगे थे । रंगीले स्वप्नों के हिंडोले पर वे अपने अपने पतियों के घर चली गईं, त्योहार फिर आया और सखियों की मनुहारों से भरी ध्वनि "बाग में बालर" सुनाई पड़ने लगी, किन्तु अबतो वह सुसराल में है, कैसे जाये, तभी उपाय मिल गया, कुंआरी ननद को उत्तम पति की कामना कराने के लिये सास से कह कर अपने साथ ले जाए । ननंद की स्वीकृति मिल गई, तो सास से पूछने का मार्ग भी कंटकहीन हो गया । किन्तु देवी की आराधना के उस फल रूप अपने पति से तो पूछा ही नहीं । अपने प्रियतम के पास चली और कहने लगी - "भंवर म्हाने खेलण दो गणगौर, म्हारी सैयां जोवे बाट ।" किन्तु पति उसे नहीं जाने देता क्योंकि उसीके सहारे तो वह जीवित है अतः न तो रात को जाने देता है न दिन को, पूछता है - के दिन री गणगौर थांके, जी थांने कतरो दिन रो चाव, पत्नी उत्तर देती है -"दस दिन री गणगौर ओ भंवरजी म्हाने सोलां दिन रो चाव ।" नायिका अपने पति के 'जलदसुभाव' की दुहाई दे-देकर कहती है किन्तु 'रातरिझावण' और 'दिन-बतलावण' पत्नी के बिना वह व्याकुल रात कैसे गुजारेगा ?[२] स्त्री के प्रति पुरुष की इतनी उत्कटाभिलाषा कहीं कहीं ही मिलती है अन्यथा स्त्री ही अधिक व्यथित दिखाई दे गई है ।

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या २४
२. परिशिष्ट गीत संख्या २५

जेठ आषाढ़ की प्रखर किरणों से तपी राजस्थान की बालू पर श्रावणमास की रिमझिमाती वर्षा की झड़ियां पड़ती है तो वह हरीतिमा से आवेष्टित प्रकृति की शोभा बनकर मानव हृदय में उमंग और उल्लास को अंकुरित कर देती है । प्रकृति के जड़ पदार्थ जब संयोग उत्सव मनाते है तब मानव हृदय उद्दीप्त क्यों न हो ? श्रावण की घटाओं में लिपटी आती है 'तीज' जिसमें प्रारम्भ से ही पत्नी की यह कामना रहती है -

`` घर-घर चंगी गोरड़ी, गावे मंगलाचार
कंता मतना चूकज्यो, तीज्यां तणों तिंवार ।``

प्रियतमा ने पहले से ही कह रखा था -

`` जो तू सायब न आवसी, सावण वेली तीज
बीजल तई झबूरड़ी घण मर जावे सीज़ ।``

प्रियतम के प्रेम को नेह भरी चुनौती भी दे दी थी -

`` आज घरा दिस उमग्यो, मोटी छांटां मेह
भीगी पागां पधारज्यो, जद जानूंली नेह ।।

प्रवासी इन मीठे-मीठे उलाहनों को सुन पिघल उठते हैं । दामिनी की दमक में उन्हें झरोखे में खड़ी, बाट निहारती, उपालम्भ देती प्रिया ही प्रिया दिखाई देती है, और 'बीज न मावे बादलां, रसिया तीज रमाव' शब्द प्रिय के कानों में गूंज रहे थे, और वह अपने मालिकों से बार-बार कह रहा है -

`` मेह बरस्यां तंबू गल्यां हलकर मरिया हौद
कांमण कंथ चितारिया, सीख करो सीसोद ।

सीख (विदा) मिल गई ``चालो तुरी उतावला, दिन थोड़ो घर दूर`` कहते हुये चल पड़ा । मार्ग में उसकी उतावल देखकर दर्शक पूछ बैठते हैं -

`` का मृग नैणी मांणावा, का खग बावा खड़ियोह ।``

इधर उसकी पत्नी फूली फूली फिर रही है । तीज के त्यौहार पर जानबूझकर ऐसे कच्चे कसूमल रंग की पगड़ियां रंगाई जाती है कि जल पड़ते ही रंगीन धारायें प्रवाहित हो उठें । स्त्रियां नयनों से गा उठती है -

`` पेंच सुरंगी पाग रा, ढांके मत घर ढाल ।
काछी चढ़ आछी कहूं, हंजा भीजण हाल ।

ऐसे मन भावन समय में तन-मन-वस्त्र रंगे हुए और उस पर घोड़ा घोड़ों पर सवारी

कर विहार करने का सुख । जीवन झूम झूम कर गा उठता है । तभी फूलों के उतार-चढ़ाव प्रारम्भ हो जाते है । सावन की झूमती घटाओं में नारी हृदय का उल्लास हिंडोला-गीत में बरस पड़ता है -

`` वन खंड में हिंडोलो मांड्यो रेसमरी पटडोर ।``[१]

इस प्रकार नायिका के हिंडोले को सूरज चन्द्रमा ब्रह्मा और ईसरजी झूलाते है जो गिरनार तक को स्पर्श करता है इस प्रकार `राणीरेणादे` के माध्यम से नायिका दिन भर बागों में क्रीड़ायें और रात्रि में श्रृंगारी-जीवन की रसकेलियां करती व्यतीत करती है । कमल सी हथेली पर रची हुई मेंहदी प्रेम-रंग का प्रतीक बन जाती है - प्रेमरस मेंहदी राचणी ।[२]

इस प्रकार प्रेमरस की रची मेंहदी जमुना जल के रस से सींची हुई और गुलक्यारी में खड़ी हुई राजस्थान के `माहल` के हृदय में एक शान्त, मौन प्रेमानुभव पनपाती रहती है । `सालूड़े` की कोर में छनी हुई यह मेंहदी जेठाणी मांड देती है और `नणद का बीर` मेंहदी देखने पर कहता है -`` हे सुहागिनी तेरे ये रचे हुये हाथ मेरे हृदय पर रख, तेरी मेंहदी पर पन्ना वार दूं ।`` प्रेमरंग के रचने की कितनी सुखदानुभूति है ।

इधर देखिये दीपमालिका में दीपकों का मंगल पर्व मनाती हुई वह किस तरह से प्रेम-ज्योति को विकीर्ण कर रही है -

`` कुण जी री- दीवला में कुण जी री बाट,
पियाजी री हेत जले जी सारी रातां ।``[३]

राजस्थानी लोकगीतों ने प्रणय की इस वर्तिका के प्रकाश में प्रिय के समागम की इच्छा, अभिलाषा, पर्यंक, रति, विलासक्रीड़ा, स्नेह-चुम्बन पदों को भी बड़ी सहजता से निखारा है ।

` हालो मेलां चालो`[४] गीत दुल्हे को सुसराल में अपने निवास स्थान से अन्तपुर में शयनगृह में ले जाते हुए गाया जाता है । नायक नायिका के प्रमर-लोचन, परस्पर रूप-मकरन्द पान करने को लालायित हो रहे है, हृदय में प्रेम, तन में कम्प आदि सात्विक भावों के साथ प्रफुल्लता थिरक रही है ।

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या २६
२. परिशिष्ट गीत संख्या २७
३. परिशिष्ट गीत संख्या २८
४. परिशिष्ट गीत संख्या २९

अपने पति को रिझाने के लिये पत्नी के प्रेम संबंधों से आकर्षक संबोधनों का प्रयोग किया जा रहा है । बहारों के छंदों पर बैठ यौवन उपवन की कलियां जब मुकुलित होती है तब चारों ओर कैसा स्मित-हास बिखर जाता है । प्राणोप्यारी नायिका छमछम करती हृदय में अमित अनुराग लिये प्रियतम के स्नेहालिंगन पाश में आती है और इधर लोकगीतों का चषक छलछला उठता है इन मधुर भावनाओं से -

" सजने ढोलाजी सोले सणगार, रसवती मैलां आयी
से मदछकिया ।"[१]

छमछमाती झांझर की झंकार में आई प्रियतमा के गुलाबी अधरों को, प्रियतम ने घूंघट खोलकर देखा - और कहा - प्रिये मुझे चुम्बन लेने दो, और फिर लज्जा से आरक्त मुखी --- । "होठांरो रस लीधो हो राम ।"
कहीं कहीं परोक्ष चित्रण भी है -

" केसर क्यारी लूटो कमधजिया
सेजां साड़ी लूटो लसकरिया ।"

ऐसा मन्नामारू पाहुना आया है । 'घण ने वांरा राजन' आज 'गला री डोडी आंण' दे देकर दाख की छाक लेंगे । अपने वैवाहिक जीवन के सुख का उपभोग करेंगे । इन दोनों को कोई भी विलग भी नहीं कर सकता क्योंकि दोनों में एकात्म भाव जो ठहरा - थे दाड़म हूं दाख हंगामी ढोला
अेकै ने बाग में दोनूं निपजा जी म्हारा राज ।[२]

ऐसी स्थिति में 'सायबां री सताई गोरी' आमै री बीजलड़ी' बनना चाहती है तो मारू का ईंदिरियो बनना एवं गोरी के 'कोयलड़ी' बनने पर मारू का 'सूवटिया' बनना स्वभाविक ही है । जब प्रियतम प्रिया का विलग होना सहन नहीं कर सकते है तो प्रियतमा कब चूकने वाली । उसने भी अपने अस्तित्व को मिटा देने की घोषणा कर दी -

जी घण फूलां जेड़ी फूठरी
राज रा पेचां मांय राख
जी घण सुरमै जेड़ी सांवली
राज रा नैणा मांय राख-

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ३०
२. परिशिष्ट गीत संख्या ३१

जी घण पांनां जैड़ी पातली
राज रा मुखड़ै मांय रास ।

ऐसे अभिन्न जोड़े के साहचर्य को यदि शयन-समय राई का कर्तव्य बोध की बात बताकर तोड़ना चाहे तो ललना का यह शाप समुचित ही प्रतीत होता है -

मरजो राईका भारोड़ी घर नार
रंग री रली में हेलो मारियो ।

जिस नींबूड़े, बावलियै, नींब, बड़ले आदि को दूध से सींचा था जिसकी रक्षा हेतु मक्खन की 'पाल' बनवाई थी उसीकी सीतल छाया में सुख भर नींद लेते समय प्रिया को सपना आया । अपने प्रियतम साथ हो, ठंडी छाया हो फिर प्रिया को सुखद सपने ही आयेंगे । मुग्धा ने अनोखा स्वप्न देखा, आंख खुलने पर वह अपने प्रिय से उस मीठे स्वप्न का भावार्थ पूछती है -

'' सुणो ओ भंवर म्हांने सपनो सो आयोजी राज,
सुपनो रो अरथ बतावो ।''[१]

हंस सरोवर पीहर, मानसरोवर ससुराल, बागों के मुकुलित चंपे भाई, फूल भाभी, पोलों के हाथी जेठ, हरी हरी दूब सास, आंगन का चौक पुत्र, मंगलकलश कुल-वधू, महल का दीपक उसका प्रियतम, उसकी प्रज्जवलित ज्योति उसकी प्रियतमा पत्नी का प्रिय उसके स्वप्न का इतना मनोहारी अर्थ बताना है जितने गृहस्थ जीवन का स्वर्गोपम चित्र खड़ा हो जाता है ।

पति-पत्नी के प्रेम में पारस्परिक ईर्ष्या-भाव उनके प्रेम को और अधिक दृढ़ भित्ति प्रदान करता है । निम्नांकित गीत में प्रश्नोत्तरों के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि वे एक दूसरे पर प्रेम शैथिल्य का दोषारोपण कर रहे है । अन्त में दोनों ही समझ जाते है । इतनी सी चरपराहट के बिना दाम्पत्य-प्रेम का पूरा आस्वादन भला कैसे हो जाता ? पीपल की छाया तले जाजम बिछाकर परदेश से आये प्रियतम और संयोगिनी प्रियतमा का मधुर संवाद वस्तुत: श्रवणीय है । कैसी अधिकार पूर्ण पूछताछ है -

' इण सरवरिये री पाल हांमी ओ ढोला रे ।'[२]

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ३२
२. परिशिष्ट गीत संख्या ३३

नित के जीवन में विनोदपूर्ण घटनायें प्रेम में और भी अमृत घोला करती है । देखिये एक गोरी अच्छी खासी पानी भरने जा रही थी कि उसके प्रियतम ने और कुछ नहीं तो, 'काकरड़ी' (कंकड़ी) ही दे मारी -

' पाणीड़े जातां, गोरी का सायबा घण पर,
कांकरणी कुण बायी म्हारा राज ।''[१]

अनेक प्रकार से प्रियतम की बतायी हुई वह 'आभा री बीजड़ली' हो जायेगी, तो प्रियतम भी कम नहीं - वह इन्द्र बन जायेगा । प्रियतमा कोयल बनकर अपने 'पीवरिये' जायेगी तो उसका प्रियतम 'सूवटा' बन पीछे पीछे आ जाएगा । कितनी विनोदमयी भावनायें हैं ।

जीवन यदि एक रस होकर ही चलता रहे तो उसमें आकर्षण भरा आनन्द नहीं रह जाता इसलिये रूठना-मनाना 'मान-मनुहार' भी जीवन में आवश्यक हो गये है । राजस्थानी लोकगीतों में मिलन, प्रसन्नता एवं हास-विलास की स्थिति में 'बजर किवाड़' एवं 'सार की सांकल' खुल जाती है और मन-मुटाव की स्थिति में इनके बंद होते भी देर नहीं लगती -

'' खोल्या खोल्या ओ बजर किवाड़ सांकल खुली सार की जी म्हारा राज,
सायब ने लागी बड़ी रीस, जुड़ीया बज्जर कवाड़ जी म्हारा राज ।''

पति-पत्नी के पारस्परिक रूठ-मनोबल के अनेकानेक सुन्दर चित्र इन गीतों में मिलते है ।

कभी कभी तो स्वयं गोरी को भी अच्छा नहीं लगता कि जीवन की गिनी चुनी घड़ियां इस प्रकार रूठने में बितायी जाए । वह कह उठती है -

'' म्हां सू मत लड़ो म्हांका भरतार ।''[२]

परदेश से आये प्रियतम से भी खूब रूठा गया है । इस प्रकार का अधिकार पूर्ण आग्रह दाम्पत्य प्रेम में ही संभव है । विलम्ब से आये पति के प्रति 'म्हें रावल सूं नांय बोलां, नांय बोलां मुख नांय बोलां,
पखवाड़ा रो कोल कर्‌यो छो, छै महीना सू आया ही ढ़ोला'

पति आकर द्वार खुलवाता है कि रूठती क्यों हो - 'थांरा सायबा खड़ा प्रतीक्षा कर रहा है'-''खोलो खोलो गोरी जड़िया किंवाड, बाहर उभो

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ३४
२. परिशिष्ट गीत संख्या ३५

थारी सायबो जी ।'' और विलम्ब की बात भुलवाकर रिझाने के लिये 'जोधाणे' की 'चूंदड़ी' लाया है । पत्नी के उलाहनों और बाद में 'सिरचढ़ी' होने का क्या कहना -

'' अठी देखो नी जरा सूं, अठी देखो नी ।''[१]

ऐसे रूठे माने में प्रियतम को अपनी प्रियतमा के लिये भारी मूल्य भी चुकाना पड़ता है । सावन की तीज पर पत्नी के द्वारा रूसणा मांडा जाता है । पति अनुराग से रेशम की डोर और पाटली से प्रियतमा के लिये चम्पा के बाग में झूला झुला रहा है, जहां ''हीडे हीडे'' घर घर की नार, हिंडावे मोही सायबाजी ।''[२] रूठे हुये पति की आर्द्रता देखनी हो तो 'गणगौर' के उस गीत में देखिये जहां गणगौर खेलने में उसकी सखियों ने देर करादी । यद्यपि पत्नी का मलिन मुख देख प्रियतम ने जाने की आज्ञा दे दी थी तथापि पत्नी की कब तक प्रतीक्षा करता 'अबोला' कर बैठा । पत्नी भयभीत होती हुई सफाई पेश करती है । उसका भोलापन देख उसे निर्दोषी जान पति प्रसन्न हो जाता है । ऐसी पत्नी या अपने को धन्य समझ बैठता है । फिर तो पत्नी को दूसरे दिन भी 'बाग में चालां ये' की संगीतमयी ध्वनि में बिभोर होने के लिये भेज देता है । उसे जाने का अनुरोध करता है -' अजी थें तो पूजो गणगोर ।'[३] पति तो प्रियतमा को प्रसन्नमुखी देखने का परमाकांक्षी है । वस्त्रालंकारों की क्या बात, उसे सब स्वीकार है । पति की इस मनोवृत्ति पर पत्नी मयूरी सी थिरक उठती है ।

'' मानव जग में बंट जाये, सुख दुःख से और दुःख सुख से '' पंत की इन पंक्तियों में सार है । सुख दुःख की आंख मिचौनी में जीवन का सार है, यही तो जीवन की सरल व्याख्या है । गृहस्थ जीवन की सफलता सार्थकता यही है जहां सब कुछ हो जाने पर भी हृदय प्रेम-मय रहे । इस मर्म को राजस्थान की नारी ने भली प्रकार समझा है । यही कारण है कि अपने पीहर जाते हुए भी पत्नी के प्राण प्रिय-प्रियतम में ही अटक रहे हैं -

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ३६
२. परिशिष्ट गीत संख्या ३७
३. परिशिष्ट गीत संख्या ३८

" मुजरो मानले नौखीला, म्हें तो पीहर चली रे ।"[१]

इधर कभी नौकरी पर जाने को तत्पर पति जब अपनी प्रिया को पीहर छोड़ कर जाना चाहता है तो इस प्रस्ताव को वह न मानकर प्रियतम को भी अपने साथ चलने के लिये कहती है कि वहां हम आनन्दपूर्वक रहेंगे और वह अपने प्रियतम के लिये सब कुछ कर देगी -

" भंवर म्हांने परण पियर मति मेलोसा, सियालेरी रैन में हो ।"[२]

कितनी ही विवशतायें क्यों न हों प्रेमियों की यह आकांक्षा रहती है कि जहां उसका प्रेमी रहे, वहीं वह भी रहे । आकांक्षा केवल ऐसे ही पूरी नहीं हो जाती है । पत्नी की आकांक्षा है कि पति ऐसा कार्य करे जिसमें वह भी साथ रह कर पति के कार्य में हाथ बंटायें और उसकी सच्ची सहधर्मिणी और अनुगामिनी कहलाये कितनी आत्मसमर्पण की भावना है, विलास की गंध नहीं, वासना की छाया नहीं, काम की पिपासा नही, है तो केवल शुद्ध आत्मसमर्पण -

" ऊंटा री लादबी छोड दो मारुजी,
लेल्यो कूवाली चोथ ।"[३]

खेतीहार जीवन के गीतों में भी प्रेम की झांकी के साथ के श्रृंगारिक भावनाओं की उद्भावना हुई है । खेती के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले आनन्द की कल्पना में पति-पत्नी का एक गीत दृष्टव्य है -

" घणारा सायबा मिल खावांगा,
डेरां मांय मतीरा लाग्या भर भर खारला लावांगा ।
चार मास चौमासे म्हें तो हिल मिल खेत कमावांगा ।"

घण सायब मिल खावांगा उद्भावों में प्रतिबिम्बित श्रृंगार के संयोग पक्ष के सौन्दर्य पूर्ण जीवन भी रसमयता का प्रतीक है ।

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ३६
२. परिशिष्ट गीत संख्या ४०
३. परिशिष्ट गीत संख्या ४१

151

इस प्रकार राजस्थान के लोकगीतों की स्वर लहरियों में संयोग श्रृंगार से परिपूर्ण दाम्पत्य जीवन के संवेदनशील उरों को कितना समेटा गया है । संयोग - श्रृंगार की पयस्विनी ने मानवीय भावनाओं के पीयूष-स्त्रोत बहाये हैं, संयोग-श्रृंगार का एक एक पद्य नितान्त निश्छलता के सरोवर के समान है, उसकी सुवास में कहीं कृत्रिमता नहीं । प्रत्येक पद्य स्वत: खिल जाने वाला फूल है । ऐसा ही तो है राजस्थानी दम्पत्तियों का जीवन, और ऐसी ही है युग-युग से चली आने वाली सामूहिकता के उद्गम से निकली लोकगीत की गंगा जिसमें सराबोर हो हृदय-कमल उत्फुल्ल हो जाता है, सम्पूर्ण अस्तित्व रागमय हो जाता है ।

संयोग श्रृंगार के लोकगीतों में नायक, नायिका तथा अन्य

काव्य एवं नाट्य में प्रधान पुरूष को नायक और प्रधान स्त्री को नायिका कहते हैं । संस्कृत साहित्य में नायक एवं नायिका के स्वरूप एवं प्रकारों का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है । आचार्य भरत ने भी नाट्य शास्त्र में इनका विस्तार पूर्वक वर्णन, रूप, गुण, यौवन, माधुर्य आदि तत्वों के आधार पर किया है । लोकगीतों में उक्त शास्त्रीय कोटि से नायक नायिका के भेद नहीं मिलते हैं । क्योंकि लोकगीतों के नायक नायिकाओं का वर्णन लोकविश्वास पर आधारित है, जिसका आधार तर्क न होकर भावना है । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि लोकगीत शास्त्रीयता से अछूते रहे हों । शास्त्रीयता है, लेकिन पूर्णत: मापदंड के साथ न होकर लोक-भावना पर आधृत है । इसीलिये यत्र-तत्र शास्त्रीय रूपों की न्यूनाधिक झलक मिलती है । अतएव दोनों प्रकार के साहित्य में पर्याप्त विभेद होते हुए भी पारस्परिक संबंध है ।

' प्रेम ' मानव की सर्वोपरि भावना है । राजस्थानी श्रृंगारिक लोकगीतों में सच्चे प्रेम के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने वाले नायक और नायिकायें हैं । जो अपने प्रेमी एवं प्रेम के लिये ही जीते हैं और मरते हैं, उनका समस्त जीवन-व्यापार मात्र प्रेम पर ही केन्द्रित रहता है । अतएव लोकगीतों की नायक-नायिकायें शास्त्रीय नियमों का पालन करने वाले नहीं है और न ही शास्त्रीय प्रक्रिया से श्रृंगार रस का प्रतिपादन करते हैं । ये तो साधारण प्रेमी एवं प्रेमिकायें है, जो केवल उत्कृष्ट कोटि का प्रेम ही जानते हैं । इनका 'रस' निर्मल नीर वाली वन्य-सरिता का अम्बु है जिसका पान सुगमता से, बिना किसी उपकरण की सहायता के किया जा सकता है । वह तो राकापति से स्त्रवित पीयूष है, जिस पर सर्व-साधारण का अधिकार है ।

आगमिष्यत्पतिका नायिका -

' ढोला ' गीत की मुग्धानायिका 'मरवण' को 'ढोला' के पूंगल पंहुचने से पूर्व ही संभाव्य मिलन सूचक अंग फड़कने की अनुभूति होती है । यह वर्णन लोकविश्वास पर आधारित है ।

' मरवण ' अपनी सखि से कहती है कि हे सखि, आज मुझे न जाने क्यों अपार आनन्द हो रहा है । मेरा बायां दृग फड़क रहा है ।

फड़की फड़की डावी घण री आंख
हरख्यो हरख्यो मारूणी रो जीवड़ो री राज ।

... ...

म्हारी आंखड़ली फड़के है
ढोलो आवसी - हां - म्हारी -----
सहेल्यां म्हारी अे आंगणियो बुहार
म्हारे बाजूबंद री लूम्ब फटके है - ढोलो आवसी ---
म्हारी आंखड़ली फड़के है ढोलो आवसी

आगतपतिका नायिका -

विरह की दीर्घावधि पश्चात प्रिय संयोग के चित्र थिरक कर अपनी अपनी कथा कह रहे हैं । संयोग की घड़ी आ रही है सचमुच उसके प्रियतम ही आ रहे है । विश्वास नही हो रहा है । अट्टालिका के अग्र भाग पर खड़ी प्रिया ने उस रास्ते पर आंखे बिछा रखी और -- और तभी केसरिया कसूमल सा रंग दिखाई दे गया, यह तो प्रवासी प्रियतम सहित युद्ध क्षेत्र से लौटने वाला दल है -

आयो आयो मेवाड़ा रो साथ
आयो कसूमल ने आयो केसरिया ।

और तभी - धापर मलूक्या है सेल
घाटी रो नगारो में सुण्योजी राज ।

इसी तरह एक गीत है 'जलाला' अथवा 'जलाल' जो पति का पर्यायवाची शब्द है । मिलन घड़ी के उत्तरोत्तर सोपान के बाद वे आये हैं जिसमें नायिका का उत्कट उल्लास व्यक्त हो रहा है -

सइयां मोरी ए आयोड़ो सुणीजे रे जलालो देस में ।

उसे इतना हर्ष है कि हर्ष से भरी वह प्रियतम से मिलन बेला में बोल भी नहीं पाती और प्रियतम देखता है -

'' पूठ फेर घण बा खड़ी जी राज ।''

दोनों ओर उमंग और प्रेम जल से सराबोर खड़े हैं । कौन-पहल करे यही इन गीतों की नायिका-नायक भेद है ।

अभिसारिका की उत्कंठा -

वासक सज्जा नायिका मादक एवं मदमस्त श्रृंगार कर संभोग लालसा से उत्कंठित हो नायक के पास पंहुचती है । लोककवि ने नायक के निकट जाती हुई उस अभिसारिका की मनोभावनाओं एवं शारीरिक चेष्टाओं का बड़ा ही मनोहारी चित्रण किया है जो दृष्टव्य है -

सजने ढोलाजी साली सणगार रसवती मैंला
आई ए मदछकिया ।

... ...

रंगमहल पोढ्या उमंग भर, रंगरेलियां रचायी
हिक पर हेक जात बलिहारी, प्रीत रीत प्रगटायी
बिरखा ऋतु आयी सा ।

नायक की आतुरता -

गीतों में नायक की आतुरता के भी बड़े मनोवैज्ञानिक शब्द चित्र उपस्थित किये है । नायक की प्रेमक्रीडा में लज्जा और भय का अनुभव करती हुई अपनी सासूजी से शिकायत करती है -

रांम जी घाल्यो घाल्यो घूंघटिये में हाथ
म्हांरो तोड्यो तिलड़ी तेवटो ओ रांम
रामजी तोड़ो तोड़ी बाजूबन्द री लूंब
इण रे राम्मैये रे आगे कांई करां ओ रांम ।

इसी तरह की आतुरता 'खेलण दो गिणगोर' गीत में भी नायक की देखते ही बनती है ।

उद्दीपन-चेष्टायें -

श्रृंगारिक गीतों में नायक नायिका की संभोग पूर्व की उद्दीपन चेष्टाओं का भी चित्रण बड़ी कुशलता से गीतकारों ने किया है । नायिका अपने नायक से प्रकोष्ठ में मिलती है । चार आंखे होते ही सैन सैन में ही उनमें स्नेह बढ़ जाता है । आलिंगन होता है और सांकेतिक रूप से चुम्बन का भी निर्देश है । यह बड़ा ही मर्यादित एवं शिष्ट विधि से वर्णित है -

पंच हजारी सायबा रंग लाग रैयौ राज
अलंयां रा खड़ियोड़ा आजो करजो पिलंग पर पांव ।
रंग के ढोलियां पौढलो घण ले जो कंठ लगाय,
जी म्हारा गैर गुंमानी सायबा रंग माय रैयौ है राज ।

समर्पिता नायिका -

नायिका कम-कम करती हृदय में अमित अनुराग लिये प्रियतम के स्नेहालिंगन-पाश में आती है । भावनाओं का चषक छलछला उठता है -

होठ तो गोरी थारा लाल रे गुलाल
बालो देवादे पदमण प्यारी लागोसा
झंपे रे दीवो मेलां उजियार
मत खींचो साड़ी रो चीर प्यारा लागोसा
रस भेद न जाणूं ऐ अलबेला
दीवो देय बुझाय प्यारा लागोसा ।

स्वाधीनपतिका नायिका -

कोई विवाहिता स्त्री प्रेम और सेवा की मधुर भावनाओं के साथ पंखा कर रही है, छत्तीस भोजन बना रही है । हृदय में प्रेम, श्रद्धा, चिन्ता आदि सद्भावनायें है ऐसी स्वकीया और स्वाधीनपतिका नायिका लोकगीतों में दृष्टव्य है -

चांदी को अंक वाटको जे मैं बूरो मात
हुक्म होय सिरकार रो जीमो दोनूं साथ
ओ सिरकार थाने पंखो ढोल जिमावूं, म्हारा राज
उमराव जी हो रसिया ।

प्रौढ़ा नायिका -

संयोग के व्यवधानों को कोसती हुई नायिका कहती है -

मुरगा किम बोल्यो अधरात ।

... ...

आछो बोल्यो रे मोरिया ढलती रात मां ।

परकीया नायिका -

ऐसी नायिका जिसके मन में ठाट बाट पूर्ण जीवन बिताने की भूख है -

महल चुणीजे जी हजारी ढोला, मैल चुणीजे ओ
एक दोय आपां रै चुणाय माया जी ओ मैल चुणीजे ओ
पुरुष- कुण रैलैला ओ सुन्दर गोरी कुण रैवैला
आपां रैवांला परदेस ।

अनुकूल पति -

जो सदा दूसरी स्त्रियों से विमुख होकर अपनी प्रिया से अनुरक्त रहता है । ऐसे नायक लोकगीतों में बहुत दिखाई देते हैं ।

अठी देखो नी जरा सूं अठी देखो नी
मैं लायो चूंदड़ी जोधाणे री थे अठी देखो नी ।[१]

दक्षिण नायक -

जो एक से अधिक पत्नियां रखता है लेकिन ऐसा प्रेमी है कि जो अधिक नायिकाओं के रखने पर सबसे प्रेम करता है तथा उन सबका सम्मान भी करता है यथा -

---

१. प० गीत सं० ३६

नैनकड़ी म्हारै कालजियैरी कोर बडोड़ी सिर री सेवरी,
नैनकड़ी म्हारै सैजां री सिणगार बडोड़ी सोवै मैल में ।।

शठ नायक -

जो कामुकतावश एकसे अधिक नायिकाओं से प्रेम करता है । यथा -

थूं मत सुरमो सार जे,घर ठाकरसा री नार
काजल कुण निरखसी,दिन रातो करै ठकुराईसा
रात सौकां संग जाय ।

श्रृंगारिक लोकगीतों में जहां विवाह और उसके मनोहर संबंधों का ही चित्रण है तो संस्कारों की पवित्रता और प्रांजलता पर ही विशेष बल दिया गया है । परन्तु विविधता-प्रिय मानव की प्रकृति उच्छृंखलता को जगह दे ही देती है और सारे जीवन भर एक पुरूष का एक स्त्री से प्रेम बना रहना अत्यन्त भला लगने पर भी कभी-कभी संभव नहीं रहता । अत: परकीया प्रेम की अभिव्यक्ति यत्र-तत्र श्रृंगारिक लोकगीतों में मिलती है । फिर भी अनुभव से विदित होता है कि उच्छृंखलता और अराजकता अपना साम्राज्य समाज पर नहीं फैला सकी है । सद् का प्रतिशद् असद् की अपेक्षा कहीं अधिक है अत: जहां तहां विवाहित पति या पत्नी के अतिरिक्त अन्य पुरूष या स्त्री से प्रेम हो जाने की व्यंजना गीतों में हुई है उसमें सामाजिक सीमाओं का उल्लंघन दृष्टि में नहीं आता ।

इन गीतों में श्रृंगारिक वर्णन बड़े ही शिष्ट एवं मर्यादित ढंग से हुआ है । सांकेतिक शैली का अनुसरण करते हुये वर्णन किया गया है जो अश्लील नहीं हो पाया है । सुरूचि की सुस्पष्ट व्यंजना है । अनुकूल-पति एवं स्वाधीनपतिका नायिका ही संयोग श्रृंगार के प्रमुख पात्र रहे हैं ।

अन्य पात्र -

नायक को अन्य पात्रों से अधिकांश में सहयोग और नायिका को अन्य पात्रों से बहुधा विरोध मिला है । नायक के निजी परिवार में पिता-माता, भाई-भाभी, बहिन-बहिनोई, भतीजा-भानजा आदि ससुराल में सास-ससुर, साला-साली आदि तथा हाली,साथी मित्र,

स्वामी आदि का श्रृंगारिक गीतों में उल्लेख मिलता है । नायिका के सहयोगी और विरोधी पात्र पीहर और ससुराल दो पक्षों में विभाजित है । पीहर में माता-पिता, भाई-भाभी, बहिन-बहिनोई आदि सभी सहयोगी हैं तो ससुराल में सौत, सास-ससुर, देवर-देराणी, जेठ-जेठाणी, नणद-नणदोई प्राय: विरोधी होते हैं ।

संयोगावस्था में नायक के घर में उपस्थित रहने पर भी नायिका को मिलन में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है । सबसे बड़ी बाधा घर के भारी कार्यों की होती है । सास-ससुर आदि बहू को घर की नौकरानी समझते है और प्रत्येक कार्य में कमी बताते हुए ताड़ना तक देते हैं -

सासू सूघली लड़े,
फोग आलड़ो बले ।
च्यार घड़ी के तड़के मैं उठी,
जे पीस्यां घड़ी दोय चूंण ।
सासड़ आय बिसराइयो
बहूवड़ ओ कांई पीस्यो चूंण ?
ऊठ सवारी दलियो दले ।
सासू सूघली लड़े ।[१]

नायिका के साजन को रूप चाहिये, वह उसकी चाल निरखता रहता है किन्तु सास उससे विश्राम के समय भी सूत कतवाती है और पानी भरवाती है । सास उनके संयोग में एक बड़ी बाधा बनी हुई है -

रसिया फागण आयो ।
चार कूंट रो चौंतरो हो रसिया ।
जिसमें कातूं सूत
तो सासू मांगे कूकड़ी
तो साजन मांगे रूप ।

---

१. राजस्थानी लोकगीत, डॉ० पुरूषोत्तमलाल मेनारिया, पृ० ७४.

संयोग श्रृंगार के लोकगीतों में प्रकृति चित्रण -

प्रकृति सृष्टि के आदि से ही प्राणीमात्र के लिये उद्दीपन का सहज एवं सुगम माध्यम रही है । वर्षा के उमड़ते हुये मेघ, वसंत की फूलों से लदी वल्लरियां, चैत्र की हंसती हुई चांदनी, सनन-सनन बहता हुआ शीतल समीर और रिमझिम रिमझिम बरसते बादलों में कूहू-कूहू करती काली कोयल किसका मन नहीं मोह लेती है । ऐसा कौन होगा जिसकी हृदयतंत्री के तार ऐसे मादक वातावरण में भी झूम न उठते हों ।

अन्य काव्यों की भांति ही राजस्थानी लोक-कवियों ने भी प्रकृति के संयोगात्मक एवं वियोगात्मक दोनों ही रूप ग्रहण किये हैं । स्थूल प्रकृति वर्णन के साथ-साथ श्रृंगारी लोकगीतों में लोककवियों ने प्रकृति को कभी उद्दीपन रूप में तो कभी आलम्बन रूप में चित्रित किया है । उद्दीपन की ऐसी स्वस्थ एवं मनोहारी पृष्ठभूमि उपस्थित की है कि पाठक पढ़ते ही आनन्द विभोर हो झूम उठता है । आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण करते हुये गीतकारों ने प्रकृति का मानवीकरण कर अन्तस् की सुख दु:खात्मक भावनाओं की बड़ी ही मार्मिक एवं सफल अभिव्यंजना की है ।

राजस्थानी लोककवियों ने प्रकृति वर्णन में कतिपय यामों, काव्य रूपों के अतिरिक्त विशेष रूप से षड्ऋतु एवं बारहमासा काव्य रूपों को ही अपनाया है । ये दोनों ही काव्य रूप राजस्थानी लोककवियों को क्रमश: संस्कृत एवं अपभ्रंश के काव्यों से उत्तराधिकार के रूप में मिले हैं ।

बारहमासा वर्णन -

राजस्थान के श्रृंगारिक लोकगीतों जहां एक ओर बारहमासा शैली में प्रकृति चित्रण में हमें विप्रलम्भ श्रृंगार के दर्शन होते हैं, दूसरी ओर लोकगीतों में प्रकृति चित्रण संयोग श्रृंगार भावना के परिवेश में भी लिखा गया है ।

असाढ़ मास में काली काली घटायें उमड़ घूमड़ कर बरस रही है । बाजरी ऊंची आ गई है । सावन में उसकी निराण की बेला हो गई

है । भाद्रपद में मूंग हो गये हैं । आश्विन मास में सारी फसल पकने का आनन्द है अतएव नायिका अपने प्रियतम के साथ रात-दिन साथ रहकर परस्पर प्रसन्नता बांटते हुये जीवन व्यतीत करती है । उसके लिये अपने को ईश्वर की आभारी मानती है । कार्तिक मास में बाजरी की बालियां (सीट्टा) तोड़कर, मगहर मास में उसे बाजार में बेचने देने का आनन्द है । पोस और माह मास में कड़कड़ाती सर्दी पड़ती है, पाला पड़ता है । नायिका अपने प्रियतम से अपनी सर्दी मिटाकर आनन्दपूर्ण जीवन के लिये ईश्वर की कृपा मानती है । फाल्गुन-चैत्र में वर्ष भर के परिश्रम के फल से संतुष्ट होकर आनन्द से आसव पान करके होलिकोत्सव और वसंतोत्सव का आनन्द अपने प्रियतम तथा सहेलियों के साथ मना कर अपने जीवन की सार्थकता प्रकट करती है । वैसाख और जेठ मास की चिलचिलाती धूप में नायक नायिकायें अपने खेत के वृक्षों की ठंडी छाया में रहकर आनन्दोपभोग मनाने में ईश्वर की बलिहारी मानते हैं[1] । इस तरह से यह एक संयोगी कृषक जीवन की झांकी है ।

षड्ऋतु -वर्णन -

भारत में छः ऋतुयें मानी गई हैं - ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, शिशिर, हेमन्त तथा वसंत । श्रृंगारिक गीतों में स्वतन्त्र रूप से षड्ऋतु वर्णन नहीं हुआ है, लेकिन इनका वर्णन करते हुये नायक नायिका की मनोभावना, शारीरिक अवस्थाओं तथा काम भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है । यहां हम षड्ऋतुओं में वर्णित श्रृंगार भावना प्रस्तुत कर रहे हैं ।

ग्रीष्मऋतु -

लोकगीतों में गीतकारों ने षड्ऋतु वर्णन ग्रीष्म ऋतु से आरम्भ किया है । ग्रीष्मऋतु वर्णन में बड़े वेग से चलने वाली लू की लपटों और शरीर को तप्त करदे ऐसी चिलचिलाती धूप का वर्णन है । 'ढोला मरवण' गीत की नायिका मरवण ग्रीष्म का वर्णन करती हुई प्रिय

1- परिशिष्ट गीत संख्या ४२

ढोले को कहती है कि ग्रीष्म की ऋतु भली है ढोला तुम इस ऋतु में पधारना । प्रियतम ढोला कहता है कि - हे सुन्दर गोरी इस ऋतु में कैसे आऊं ? इसमें तो प्रखर सूर्य की धूप (तावड़ा) तपती है अत: कैसे आऊं ? तब सुन्दरी कहती है कि मैं तुम्हारे लिये रेशम की डोरी वाले तम्बू सामने भेजूंगी आप उसकी छाया में आजाना और महल में दोनों सुखपूर्वक रहेंगे ।

मंवर थे मल आइजो रे
आ तो उनाळे री रूतड़ी भलेरी
पुरूष- ऊनाळे रा तावड़ियो तपै
अे मरवण किमकर आवां अे ?
स्त्री- मंवर रेसम री तणियां रा तम्बू
साम्हां मैलूं ओ
मंवर आंपै मैलां रेस्यां ओ ।

वर्षाऋतु -

पावस ऋतु के वर्णन में हमें स्वतन्त्र उद्दीपन विभाग के रूप में मानव सापेक्ष अनुभूतियों के अनुकूल प्रकृति चित्रण का स्वरूप भी प्राप्त होता है । वर्षाऋतु का वर्णन करते हुये गीतकारों ने कहा है कि जोरों की वर्षा होने से नदी, नाले, तालाब सब भर गये हैं । वर्षाऋतु में तरू-लतायें पल्लवित हो गये हैं वृक्षों के अंकुर निकल पड़े हैं । चारों ओर आशा और उमंग का वातावरण छा जाता है । खेतों में फसलें लहराने लगती है ।

वर्षा काल में राजस्थान का परम लोकप्रिय त्यौहार 'तीज' आता है । इस त्यौहार पर प्रवास गये हुए व्यक्ति भी अपने घर लौट आते है । चारों और सावन के फूलों की बहार होती है ।

वर्षा का वर्णन राजस्थानी लोकगीतकारों ने अनेक प्रकार से किया है । प्रवास में जाने को तैयार पति को नायिका कहती है -

तीज रमै छै तीजण्यां, साजण ले ले लार ।
चढ़ो कियां छो चाकरी सांहना सरदार ।।

जिस ऋतु में प्रियतमा पृथ्वी और प्रिय गगन का मिलन होता है उस मौसम में भला पत्नी प्रिय के बिना कब रहना पसंद करेगी ? वह भी इस समय

प्रियतम की बाहों में बाहें डालकर झूला झूलने में स्वर्गिक आनन्द की अनुभूति करेगी । ऐसा करने पर ही उसका प्रेम पूर्ण पराकाष्ठा पर पहुंचेगा । 'हींडौ' नामक गीत प्रेम के प्रतीक रूप में ही प्रणीत है -

सांवणियै रौ हींडौ रे बांधण जाय ।
हींडौ रे बडले री साख सूं रे
रेसम री तणियांह
म्हैं नै तो बालम हींडसां जी
गल दे रे बांहडियांह
सावणियै रो हींडौ रे बांधण जाय ।

एक अन्य गीत में गीतकारों ने सुरंगे सावण का वर्णन करते हुये कहा है कि हे पपीहे तेरे बोलने की ऋतु आ गई है, जेठ मास की लूयें बीत गई हैं चारों ओर काली घटा छा गई है, धीमी धीमी पुरवाई चलती है । मोठ बाजरी के खेत लहराते है, बन-बन हरियाली छा गई है । रिमझिम मेंह बरसता है श्याम बदली घिर गई है ।

ऋत आई रे पपैया थारे बोलण री ऋत आई ।
जेठ मास री लूवां रे बीती, अब सुरंगा ऋत आई रे,
असाढ़ उतरियो, सावण लाग्यो, काली घटा घिर आई रे,
कदेयक झोला चलै सूरियौ, धीमी धीमी पुरवाई रे - ऋत ----
मोठ बाजरी सूं खेत लहरके, बन-बन हरियाली छाई रे । ऋत ---
झिरमिर-झिरमिर मेहड़ो बरसे, स्याम बदली घिर आई रे
ऋत आई रे पपेया, थारे बोलण री ऋत आई रे ।

वर्षाऋतु में हाथ में हाथ डालकर घटा घूमघूम कर आ रही है । अच्छी झड़ी ला रही है । हे प्रियतम ! तुम भी अपने रंगमहल में इसी प्रकार अपना स्नेहरस बरवाना ।

घूम घटा कर घालियां, उर परलंम अहेह ।
बालम नित बिरसावजो, महलां रंगझड मेह ।।

ऐसी ऋतु में सुसराल को स्वर्ग बताया है जो दृष्टव्य है -

बिरखा ऋतु आयी सा, ओ जी महाराजा पावस ऋतु आयी सा ।
मौसम मन भायो सा हालो सासरे, सुरंगी ऋतु आयी सा साजन-सुखदायी सा।
म्हांरे मन भायी सा हालो सासरे ।।
उठ कांठल काली उतराधी, घूम घटा गहरायी ।
आवै पवन अटा पर आछा घटा लूंब लहरायी । बिरखा ऋतु -------
चारूं दिसा बीजली चमके, इन्दर झडी लायी ।
पीव ही पीव पुकार पपीहें, नेह लता सरसायी ।। पावस०

शरदऋतु -

नायिका सर्दी में पतिसामीप्य की ही कामना करती हुई कहती है कि गर्मी में पौमचे, चौमासे में लहरिये और सर्दी में फागणिये कपड़े तैयार करवाइये । गर्मी में पिता के यहां पर, चौमासे में मामा के यहां रखिये और सर्दी में हमको साथ लेकर चलिये ।

ओ म्हारी जोड़ी रा ओ मिरगानैणी रा
रतन सियाळो राजन यूं ई गयो ।
ऊंनाला रा पांच महीना, चौमासा रा चार महीना,
सीयाळा रा लागे थोड़ा थोड़ा - म्हारी जोड़ी ---
ऊंनाळा रा बाप रे, चौमासा रा मामा रे
सियाळा रा म्हांने ले चालो - म्हारी जोड़ी ---
ऊंनाळा रा चौक में चौमासा रा मेड़ियां,
सियाळा में ओवरियो पोढ़ो ओ - म्हारी ------
ऊनालो फेर आवेला, चौमासा फेर आवेला,
गयो तो जोबन फेर नही आवे - म्हारी ----
ओ म्हारी जोड़ी रा ओ ओ मिरगानैणी रा रतन ----

हेमन्त-शिशिर ऋतु -

राजस्थान में हेमन्त शिशिर ऋतु में असह्य शीत पड़ती है और उसमें अत्यंत शीत भरी उत्तरी वात चलती है जिससे पेड़ पौधे झुलस जाते है । लोकगीतकारों ने कड़कड़ाती सर्दी का वर्णन करते हुये बताया है कि सोने की सिगड़ी और अंगारे मानो रत्नजड़ित है तथा सररी 'सेली' पहिनने पर भी लगती है अर्थात् कई साधनों के होते हुये भी वह दूर नही

होती, केवल प्रियतमा ही उसे दूर कर पाई ।

कस्यां रे नगर सूं आयो रे सियाळो,
तो घर कुणी जी रे जाइयो भंवरजी
यो जाड़ो सेली वाला ने लागे ।
सोना री सगड़ी, जड़ाऊ रा दूध्यां,
तोई म्हारो जाड़ो नहीं जाइयो भंवरजी । -यो जाड़ो
सोना री चुसकी, जड़ाऊ रा प्याला
तोई म्हारो जाड़ो नहीं जाईयो भंवरजी । -यो जाड़ो
रमफम करता लाड़ीसा पधारिया
अबे म्हारो जाड़ो जाईयो भंवरजी ।
यो जाड़ो सेलीवाला ने लागे ।।

वसंतऋतु -

कड़कड़ाती सर्दी का अन्त होते ही राजस्थान में सुहावनी बयार बहने लगती है तो जड़-चेतन में नवजीवन का संचार हो जाता है । खेतों में हरी हरी फसलें लहराने लगती है और इसके साथ जनता का मन मयूर नाच उठता है । वसंतऋतु की मादकता से प्रभावित होकर राजस्थान में होली का त्यौहार बड़े उत्साह से मनाती है मानो ऋतुराज का स्वागत होलिकोत्सव द्वारा कर रहे हों । ऐसी मादक ऋतु और साथ में फागण मास में नायिका भी पति को परदेश जाते रोकती है -

फागण मास वसंत ऋतु, मंवर सुणो भरतार ।
परदेशी री चाकरी चाले कोण गंवार ।।

२- रसिया फागण आयो
चार कूंटरों चोंतरो हा रसिया,
जिसमें कातूं सूत
तो सासू मांगे कूकड़ी
तो साजन मांगे रूप । -रसिया ---

३- गोरी रा बदन पे कुण मारी पिचकारी मोय बताओ
चढ़ता जोबण पर कुण मारी पिचकारी
माथा ने मैंमद, अधक बराजे,
तो रखड़ी री छब न्यारी ।

बाईसा रा वीरा सासूजी रा जाया,

तो राजन मारी पिचकारी ।

कुण मारी पिचकारी । गोरी -------

अष्टयाम वर्णन -

राजस्थानी श्रृंगारी लोकगीतों में पूर्णत: अष्टयाम का वर्णन तो नहीं प्राप्त होता है लेकिन कतिपय यामों का वर्णन मिलता है जो दृष्टव्य है । नायिका मिलन का आनन्द अधिक देर तक प्राप्त करने के लिये सूरज से थोड़ी देर से उदय होने की प्रार्थना करती है -

सूरज थांने पूजती हो,

तो भर-भर मोत्यां थाल ।

छनेक मोड़ो तो ऊगज्यो हो रसिया

म्हारा भंवर चढ़े दरबार

'मरवण' गीत में नायिका मरवण अपने सौन्दर्य का वर्णन करती हुई प्रियतम ढोला को कहती है कि तुम्हारी स्त्री सोने के समान सुंदर, चांदी की तरह उज्जवल, मोती की तरह निर्मल तथा हीरे की तरह चमकीली है, उसे अपने हृदय में रखो । ओ आलीजा । आज की रात ठहर जाओ और कल सुबह जाना ।

सोना री सरीखी धण पीलरी हो राज

राज ढोला, राखो नी थांरे हिवड़े रे मांय,

परभाते सिधावजो, आलीजा ओ, आज रेवो नी रात ।

इसी तरह एक अन्य गीत में नायक कहता है कि -

पीली ने परभातां म्हारे जाणो रे वार

वलतो सेरों री शिकार प्यारा लागोसा ।

राजस्थान अपने रंग की घड़ियों मे भी कर्तव्य और वीरता को नहीं भूला है । तभी तो वह कहता है मुझे प्रात: ही लुटेरों को मारने जाना है और लौटते शेरों की शिकार करनी है । कितने ऊंचे भाव हैं ।

प्रस्तुत गीत की नायिका सायंकाल को महत्व देती हुई कहती है कि कु जब बादलों में कहीं कहीं तारे चमकने लगते और मैं उनकी प्रतीक्षा में वस्त्राभूषणों से सज्ज होती हूं और जब सायंकाल पिया पधारते हैं तो मुझे उस सायं-वेला में विशेष प्यारे लगते है क्योंकि मनभावन की मिलन वेला जो है -

दल बादल बीच चमके जी तारा,
सांझ समै पिव लागो जी प्यारा
कांई रे जबाब करूं पीया, जबाब करूंली, जबाब करूंली,
आलीजे रे सेजा में रीझ रहूंली, कांई रे मिजाज करूं रसिया ।

लोकगीतकारों ने प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत धरती और आकाश के सम्पूर्ण सौन्दर्य को व्यक्त किया है । इसमें सूरज, चांद, तारे, बीजली, बादल, पवन, आदि आकाशीय वस्तुओं के साथ ही धरती पर पड़नेवाली धूप, चांदनी, विस्तृत मरूस्थल, वन-उपवन, नदी-नाले, सरोवर आदि का सुरम्य चित्रण किया है । उदाहरण के लिये सूरज और इससे संबंधित वातावरण का सरस वर्णन इस गीत में हुआ है -

धोला धोला कांई करो अे, धोला वन में कपास
धोलो सूरज जी रो घोड़लो अे, धोला बहू रेणादे रा दांत
उगतो उजास वरणो, आथमतो सिंदूर वरणो
गंऊ अे चरण चाली, पंखीड़ा मारग चाल्या नेम धरम सब साथ ।[१]

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ६६